International Referred Research Journal,May,2011 ISSN-0975-3486 RNI: RAJBIL 2009/30097 VOL-II *ISSUE 20

शोध पत्र- नृत्य

May, 2011

रायगढ घराना

* डॉ. गीता शर्मा

* अतिथि विद्वान, राजामनसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय, ग्वालियर

रायगढ़ में नृत्य का इतिहास लगभग एक सदी पुराना है। लोकनृत्य को छोड़ दें तो शास्त्रीय नृत्य की परम्परा यहाँ लखनऊ, बनारस घरानें के बाद ही प्रारम्भ हुई। 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में नवाब साहब की मृत्यु के बाद सन्नाटा सा छा गया कथक जगत में। कथक के गुरूओं की शान-शौकत छीन ली गई और वे अपने आप को अनाथ महसूस करने लगे। महाराज विन्दादीन और कालिका प्रसाद तथा उनके तीनों महान् पुत्र अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, शम्भ महाराज, और ऐसे अनगिनत संगीतकार आश्रयहीन होकर अवध छोड़ने लगे। रामपुर दरबार में नौकर हो गये वे लोग जिनके बाप दादा अवध की राजधानी में सिंहासन के आजू-बाजू बैठा करते थे। नवाब हामिद अली जो स्वयं एक बेजोड़ संगीतकार थे कलाकारों के साथ नौकरों की तरह बर्ताब करते थे। अंग्रेजों का भारत की कलाओं के प्रतिअसूया के कारण समाज में नृत्य का स्थान गौड़ हो चुका था। थोड़ी बहुत रोजी रोटी तवायफों के कोठों पर अर्जित कर लेते थे कलाकार!

जयपुर के कथकों की भी यही हालत थी। सारे हिन्दूस्तान में भटकते हुए नाचते और नचाते एक शहर से दूसरे शहर घूमा करते थे। स्व. जयलाल जी, सुंदर प्रसाद जी, नारायण प्रसाद जी, मोहनलाल जी, शिवलाल जी आदि ऐसे कलाकार जिनके नाम लेने से रोंगटे खड़े हो जाते है, अपनी जीविका की खोज में घूमते फिरते थे राजाश्रय के छूट जाने पर। लखनऊ घराने के सितारों की रोशनी रामपुर में छिप गई थी। उनका दम उस दरबार में घुटने लगा था और उलझन सी महसूस करने लगे थे। ये आलम था 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में कलाकारों का। ऐसे संकट के समय में पुराने मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ अंचल के रायगढ़ नामक स्थान पर एक मसीहे का जन्म हुआ जो कलाकारों की डूबती नैया को आगे चलकर तूफानों से बचाने वाला था ये कोई नहीं जानता था कि 1905 में जब इनका जन्म रायगढ़ के राजा भूपदेव सिंह के घर में हुआ, कि यही बालक है जो नन्हे महाराज के नाम से पुकारा जाता था, आगे चलकर राजा चक्रधर सिंह के नाम से सारे भारत में यश प्राप्त करेगा और संगीत के इतिहास में विशेषकर कथक के इतिहास में सुनहरे अक्षरों में जीवित रहेगा।

रायगढ़ राज्य की स्थापना को लेकर क्षणिक भ्रम की स्थिति तो है लेकिन अधिकांश इतिहासकार राजा मदन सिंह को ही इसका संस्थापक मानते हैं। लेकिन दरयाव सिंह को इस बिन्दु से अमान्य नहीं किया जा सकता इसलिए उन्हें राजा मदन सिंह का पूर्वज तो माना ही जा सकता है। इस तरह उनका वंशवृक्ष इस प्रकार होगा।

राजा मदन सिंह के निधन के बाद क्रमशः राजा तरवत सिंह, वेद सिंह, दिलीप सिंह, जुझार सिंह, देवनाथ सिंह, घनश्याम सिंह, भूपदेव सिंह और नटवर सिंह गद्दी पर बैठे। नटवर सिंह के बाद चक्रधर सिंह ने सत्ता संभाली। चक्रधर सिंह का जन्म 19 अगस्त सन 1905 में हुआ था। चक्रधर सिंह तीन भाई थे- नटवर सिंह, चक्रधर सिंह और बलभद्र सिंह। चक्रधर सिंह राजा भूपदेव के मझले पुत्र थे, इसीलिए इन्हें नन्हे महाराज के रूप में भी जाना जाता था। वह जब छिंदवाड़ा में प्रशासनिक शिक्षा ले रहे थे तभी उनके बड़े भाई राजा नटवर सिंह का निधन हो गया। तब उनकी भाभी (विधवारानी) ने उन्हें गोद लिया और सन् 1924 में उनका राज्याभिषेक हुआ।

भूपदेव सिंह एक महान्संगीत प्रेमी राजा थे। एक कुशल शासक होने के अलावा संगीत के भी सहृदयी रसिक थे। रायगढ़ के आसपास रहने वाली गरीब जनता अपने पूर्वजों की कलाओं का प्रदर्शन कर राजा भूपदेव सिंह से मुंह मागें इनाम पाया करती थी। रायगढ़ के राजमहल के सामने वाले छोटे से मैदान में केलो नदी के कलकल नाद के साथ-साथ मासूम देहाती नर्तकों के घुंघरू की झनकार मनमोहक समा बाँधा करती थी। फिर आता था गणेश मेला। रात दिन इन लोक कलाकारों के स्वर और ताल, आदि से अंत तक रायगढ़ की फिजा में गूँजने लगते थे। इतना ही नहीं देशभर के संगीतकार भी आमंत्रित किये जाते थे और फिर जमती थी शास्त्रीय संगीत की बैठकें। एक से एक तवायफ गणेश मेला के अवसर पर राजा भूपदेव सिंह का दर्शन कर उनके सम्मुख अपने संगीत व नृत्य साधना का प्रदर्शन कर मालामाल होकर जाते थे। लखनऊ की गौहर जान, इलाहाबाद की जानकारी बाई उर्फ छप्पन छुरी, लखनऊ के ननुवा और बिछुवा आदि इनमें से प्रमुख थे। ऐसे संगीतमय वातावरण में गुजरा राजा चक्रधर सिंह का बाल्यकाल। कई दिन और कई रातें गुजारी उन्होंने बाल्यवस्था से ही स्वर ताल का रसास्वादन करते-करते।

और फिर उनकी शिक्षा दीक्षा भी कोई मामूली पाठशाला में नहीं हुई बल्कि रायपुर में राजा, महाराजाओं के युवराजों को कुशल शासक एवं विद्वान बनाने के लिए विशेष रूप से स्थापित राजकुमार कॉलेज में हुई। अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत और हिन्दी का खूब अध्ययन किया युवराज चक्रधर सिंह ने और सीनियर केम्ब्रिज की उपाधि प्राप्त कर ली।

सन् 1924 में रायगढ़ की गद्दी पर विराजमान होने के बाद उन्होंने संगीतकारों के उद्धार का सराहनीय कार्य तुरन्त प्रारम्भ किया। गणेश मेला भी और अधिक कार्यक्रमों से ओतप्रोत होने लगा। लोककला मंडलियों का महीनों रायगढ़ दरबार के सामने रहना और प्रांतीय कलाओं को प्रस्तुत करना एक नियमित कार्यक्रम बन गया था। शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम भी बढ़ने लगे और अतिथि कलाकारों का आदर सत्कार इतने सौहार्द रूप में होने लगा कि देखते-देखते देश भर में राजा साहब की कलाकारों के प्रति उदारता का ढिंढोरा पिट गया। भटकते फिरने वाले कलाकारों को रायगढ़ आकर्षित करने लगा। फिर आने लगे भारत के कोने-कोने से गायन, वादन और नृत्य के दिग्गज। जो यहां आता फिर जाना नहीं चाहता था। देखते देखते रायगढ़ दरबार और शहर

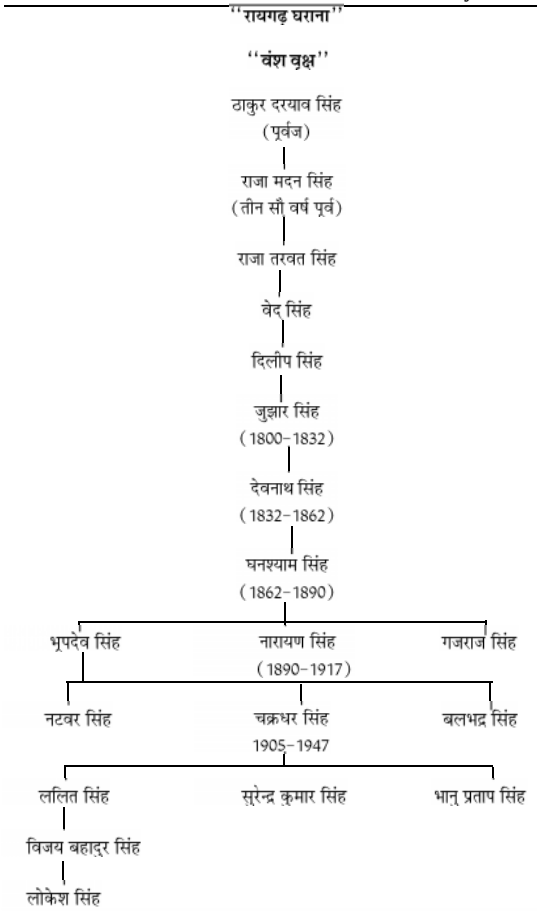

कलाकारों से भर गया। भारत भर के कथक भी भौरों की तरह यहीं मंडराने लगे। शिवलाल जी, शिवप्रसाद जी, शिव-नारायण जी, नारायण प्रसाद जी, जयलाल जी, अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, शम्भू महाराज और सीता राम महाराज आदि। राजा साहब ने सोचा कि छत्तीसगढ़ में कथक की गहरी नींव पड़नी चाहिए। और फिर शुरू हुई खोज, योग्य लड़को का जो उपरोक्त गुरूओं से शिक्षा प्राप्त कर छत्तीसगढ़ अंचल में कथक नृत्य का स्थायी रूप से प्रचार-प्रसार कर सके। रायगढ़ के आसपास के गांवो में ''गम्मत'' नाचने वाले बाल कलाकारों को ढूंढ निकाला गया। तब आगमन हुआ अनुजराम, कार्तिकराम, फिरतू दास, कल्याणदास, एवं वर्मन लाल का। महान गुरूओं को योग्य एवं भक्तिवान् शिष्य प्राप्त हुए। फिर शुरू हुई उस्वादों और शागिर्दो की मेहनत। हर रोज दस बारह घंटे का कठोर परिश्रम करते थे ये नवयुवक। फिर कुछ ही दिनों में गुरूओं के आशीर्वाद व राजा साहब की कृपा और स्वयं के परिश्रम से चारों युवा नर्तक- अद्‌भुत रूप से तैयार होने लगे। राजा साहब पूरा समय इनके प्रगति की देख-रेख करते थे। पैरों में चार-चार पांच-पांच किलो वजन के ठोस घुंघरू पहनाकर पसीने से सब कपड़े भीग जाने तक नाचते थे ये युवक। इन चारो की शिक्षा दीक्षा का असली श्रेय जयपुर घराने के जयलाल जी को जाता है और दूसरा गुरू अच्छन महाराज जी को, जिन्होंने तोड़े, परन, तिहाई आदि के अतिरिक्त भावाभिनय की भी शिक्षा दी इन चारों नर्तकों को। गुरू लच्छू महाराज जी ने वर्मनलाल को लास्य नृत्य की विशेष शिक्षा दी। नारायण प्रसाद जी और सीताराम जी ने भी काफी शिक्षा दीक्षा दी।

मोतीलाल के निचले हिस्से में तालीम खाना था जहाँ पर इन लोगों का रियाज कराया जाता था। वहाँ के अलावा हर गुरू अपने-अपने घर में अपने-अपने पसंद के शिष्यों को अलग से तालीम देते थे और शाम को अपने-अपने शार्गिदों को राजा साहब और गणमान्य अतिथियों के सम्मुख पेश करते थे। राजा साहब स्वयं एक अवतारी पुरूष थे और इन गुरूओं की कला का इनको गहन अध्ययन था जिसके कारण वे कथक के हर उसूल से वाकिफ थे और हर खूबसूरती के पारखी थे। चाहे गुरू हो चाहे शार्गिद हर एक की त्रुटि को वे तुरन्त समझाया करते थे। गुरू लोग भी इसीलिए नाराज नहीं होते थे क्योंकि वे जानते थे कि राजा साहब कभी भी गलत जगह पर नहीं टोकते। कभी-कभी तो शाम के समय रायगढ़ दरबार इन्द्र का दरबार प्रतीत होता था। राजा साहब के आग्रह पर सभी गुरू एक साथ खड़े होकर नाचने लगते थे और अपने-अपने घरानों की विशेषताओं को जी भर कर राजा साहब के सामने प्रदर्शित करते थे और उनका मन जीतने का प्रयत्न करते थे। ऐसे अवसरों पर देखने वालों के रोंगटे खड़े हो जाते थे। शागिर्दो के दिल धड़कने लगते थे। वाह वा, बहुत खूब, क्या कहने आदि शब्दों से और तालियों की गड़गड़ाहट से गूंजने लगता था सारा मोतीमहल।

फिर शुरू हो गया था कान्फ्रेंसों का दौर। रायगढ़ दरबार का नाम देशभर में कथक के लिए छा गया था। भारत के हर कोने में रायगढ़ दरबार के नर्तकों की कला को देखने की लालसा बढ़ने लगी। निमंत्रण आने लगे राजा चक्रधर सिंह के नाम। 1933 में पहली बार रायगढ़ के नर्तक एक कान्फ्रेंस में भाग लिये थे जो इलाहाबाद में हुआ था। राजा साहब इस कान्फ्रेंस में कार्तिकराम और फिरतू दास को भेजे थे। वहीं से रायगढ़ का नाम कथक जगत में रोशन होने लगा। दूसरा ऐतिहासिक कान्फ्रेंस भी सन् 1936 में इलाहाबाद में ही हुआ जिसमें राजा साहब को मुख्य अतिथि के रूप में बुलाया गया इस कान्फ्रेंस में दरबार के चारों नर्तक कार्तिक-राम, कल्याणदास, फिरतू दास, और वर्मन लाल ने अपनी प्रतिभा दिखायी। राजा साहब ने अपने अध्यक्षीय भाषण में भी बहुत महत्वपूर्ण बातें कही थी। इलाहाबाद से आते रायगढ़ दरबार को पूरी मंडली जो कि लगभग 70,80 लोगों की होती थी कानपुर में एक कान्फ्रेंस में दो दिन नृत्य प्रस्तुत कर रायगढ़ लौट आये। फिर कान्फ्रेंसो का सिलसिला चलता रहा और सारे भारत में रायगढ़ दरबार के नर्तक और राजा चक्रधर सिंह का खूब नाम हुआ।

कार्तिक-कल्याण की जोड़ी एक मुहावरा बन गई थी, और एक ऐसे समय कथक नृत्य को यश प्राप्त हुआ जब कि समाज में उसके पतन के संकेत लक्षित होने लगे थे। राजा साहब स्वयं भी जिस शहर में जाते थे पूरे संगीतकार और नृत्यकारों की गुरू शिष्य मंडली हमेशा उनके साथ रहती थी। हर शहर में वे संगीतकारों और गणमान्य व्यक्तियों को आमंत्रित कर रायगढ़ दरबार के नर्तकों और गुरूवों का कथक नृत्य का कार्यक्रम दिखाते थे। इस प्रकार राजा साहब के दरबार में जयुपर और लखनऊ दोनों घरानों की कला खूब विकसित हुई। दोनों घरानों के गुरूजन खूब मिलजुल कर कार्य करते थे और घराने का झगड़ा कभी उत्पन्न नहीं होता था। कथक नृत्य के प्रचार के अलावा इसमें अनुसंधान कर इसको सुरक्षित करने का श्रेय भी रायगढ़ दरबार को ही जाता है। लाखों रूपये खर्च कर राजा साहब ने सब गुरूओं से उनकी खानदानी बहुमूल्य बंदिशो को एकत्रित किया और उन सब को ग्रंथों के रूप में

सुरक्षित किया। इस कार्य में उनका हाथ बटाते थे। संगीताचार्य भूषणमहाराज जो संस्कृत एक प्रकांड के विद्वान और संगीतकार थे। जब कोई उस्ताद कोई परन सुनाता था तो राजा साहब के इशारे पर भूषण महाराज एक ही बार सुनने से नोटेशन में लिख देते थे। वे स्वयं भी एक अच्छे रचनाकार थे। राजा साहब ने भी अच्छी-अच्छी बंदिशें बनाकरैं सैकड़ों की संख्या में अपने ग्रंथों में दर्ज करवाते थे। इस प्रकार राजा साहब ने निम्नलिखित ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की-1. नृत्य से संबंधित ''नर्तन सर्वस्वम'', वजन साढ़े छ: किलोग्राम। 2. तालों से संबंधित ''ताल तोय निधि'', वजन छत्तीस किलोग्राम। 3. तबले के बोलों से संबंधित ''ताल बल पुष्पाकर'', वजन साढ़े तीन किलोग्राम। 4. मृदंग के परनो से संबंधित दो भागों में ''मुरज परन पुष्पाकर''। 5. छ: राग और छत्तीस रागनियों से संबंधित ''राग रत्न मंजूषा''। राजा साहब ने अपने कार्यकाल में सारी कला पूँजी को इन ग्रंथो में आने वाली पीढ़ी के मार्गदर्शन के लिए सुरक्षित करने का महान् कार्य कर कथक नृत्य को एक नया जीवन प्रदान कर सन् 1947 में वे इस संसार से चल बसे।

निष्कर्षत: - कहा जा सकता है कि रायगढ़ घराने की कथक-शैली का वैशिष्ट्य उसकी प्रस्तुति में होता है। इस घराने के नर्तक सैद्धांतिक पक्ष का तो निर्वाह करते ही हैं साथ ही उसकी प्रस्तुति में ऐसे भाव, लय, तत्कार आदि समाहित करते हैं, जिससे उनका नृत्य अन्य घरानों के नृत्य से अलग दिखाई देता है। बोलों पर नृत्य करना यहां की विशिष्टता है। इसका स्रेय भी राजा चक्रधर सिंह को जाता है। जिन्होंने अर्थहीन तोड़ों परनों को अर्थपूर्ण बनाने का कार्य किया। गत भाव और गत निकास में भी यहाँ के कथक रसोत्पत्ति करते हुए पलटों का प्रयोग करते है। डॉ. भगवान दास माणिक मानते हैं कि- 'चलठाठ' की उत्पत्ति रायगढ़ में हुई। पं. जयलाल महाराज ने चल ठाठ का प्रयोग यहाँ पहली बार किया। अन्य घरानों में यह देखने को नहीं मिलता। यही नहीं ठाठ के अन्तर्गत कटाक्ष का प्रयोग भी इसी घराने की विशेषता है। यहाँ के नर्तक तोड़े- परनों को कटाक्ष भावों द्वारा बड़ी कुशलता के साथ थाट के अंतर्गत प्रस्तुत करते है।[4] गतभाव और गत निकास में भी यहाँ के कथक रसोत्पत्ति करते हुए पलटों का प्रयोग करते है। विभिन्न गतनिकासों, मुद्राओं एवं मुखाभिनयों द्वारा कथानकों की प्रस्तुति इस घराने की विशेषता मानी जाती है। कथावस्तु को अभिनय, चाल एवं दृष्टियों से प्रस्तुत करना इस घराने के नर्तकों की विशेषता है। इस घराने के नर्तक भाव प्रदर्शन में भी प्रवीण होते है। वे दोनों तरह (खड़े और बैठकर) से भाव प्रदर्शन करते है। राजा चक्रधर सिंह भावाभिव्यक्ति को प्रमुखता देते थे। यही कारण है कि यहाँ के कथक भावपूर्ण कथक को प्रमुखता देते है।

रायगढ़ घराने के कथक को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-

क- गुरू के रूप में प्रमुख नर्तक ख- शिष्य के रूप में प्रमुख नर्तक

क- गुरू के रूप में प्रमुख नर्तक जो रायगढ़ दरबार में रहकर शिक्षा दिये, वे है- 1- मोहनलाल जी, 2- जयलाल महाराज, 3- नारायण प्रसाद जी, 4- अच्छन महाराज, 5- लच्छू महाराज, 6- शम्भू महाराज, 7- सीताराम महाराज आदि।

ख- शिष्य के रूप में प्रमुख नर्तक जिनका रायगढ़ घराने में रहकर यह सौभाग्य रहा कि उन्हें देश के विख्यात और विभिन्न घरानों के गुरूओं से सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। वे है।- 1- अनुज राममलायकर, 2- कार्तिक राम, 3- फिरतू दास, 4- कल्याणदास महन्त, 5- वर्मन लाल। उपर्युक्त कलाकारों के अलावा भी अनेक ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने रायगढ़ घराने की कथक-शैली का समावेश स्वयं की शैली में किया। इनमें प्रमुख है-जय कुमारी, चौबे महाराज, हजारी लाल, सोहन लाल, जयकिशन, श्री किशन, हीरालाल, कुन्दनलाल, मोती लाल, ज्योतिलाल, बम शंकर आदि शामिल है। इनके अतिरिक्त युवा पीढ़ी के नर्तक भी रायगढ़ घराने की कथक परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य कर रहे हैं। डॉ. भगवानदास माणिक, पं. राममूर्ति, पं. सुनील वैष्णव, सुश्री बांसती, डॉ. मोहिनी माणिक, श्रीमती मोनिका श्रीवास्तव, मानव महंत, शरद वैष्णव। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कथक की जो परम्परा राजा चक्रधर महाराज ने स्थापित की वह पल्लवित-पुष्पित होकर अपनी छटा बिखेर रही है। इससे न केवल कथक का भविष्य सुरक्षित हो रहा है, बल्कि रायगढ़ शैली भी विकसित हो रही है।

इस सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात प्रश्न यह उठता है कि कथक अन्य के तीन प्रमुख घराने लखनऊ, जयपुर और बनारस की तुलना में रायगढ़ घराने को उतनी लोकप्रियता क्यों नहीं मिली? इसका मुख्य कारण महाराजा चक्रधर सिंह की अकाल मृत्यु ही है। आपका जन्म 1905 में हुआ, व 15 फरवरी 1924 को रायगढ़ की गद्दी पर बिठाया गया। राजा चक्रधर सिंह की मृत्यु 1947 में मात्र 42 वर्ष की आयु में हुई। वे केवल 23 वर्ष शासन किये। राजा चक्रधर सिंह अपनी सामान्य आयु अर्थात 60-70 वर्ष तक जीवित रहते तो आज सम्पूर्ण भारत में रायगढ़ का कथक किया जा रहा होता और रायगढ़ घराना देश के सर्वश्रेष्ठ घरानों में अग्रणीय होता। यही कारण है कि अन्य प्रमुख तीनो घरानों की तुलना में रायगढ़ घराने को उतनी लोकप्रियता नहीं मिल पाई। जितनी इसे मिलनी चाहिए थी।

संदर्भ ग्रंथ

1) छत्तीसगढ़ ज्ञान कोष: हीरालाला शुक्ल। म.प्र. हिन्दी-ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, द्वितीय संस्करण 2004 2) रायगढ़ में कत्थक: कार्तिक राम: उस्ताद अलाउदीन खाँ संगीत अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण 1982 3) रायगढ़ दरबार: डॉ. पी.डी. आशीर्वादम् : अगम कला प्रकाशन दिल्ली : प्रथम संस्करण 1990 4) भारतीय संस्कृति कत्थक-परम्परा : डॉ. माण्डवी सिंह: स्वाति पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1990 5) कत्थक के प्राचीन नृत्तांग: डॉ. गीता रघुवीर, 6) प्रो.डॉ. भगवानदास माणिक से बात-चीत द्वारा। 7)सुश्री बासंती वैष्ण, श्री राममूर्ती वैष्णव, श्री सुनील वैष्णव से बात-चीत द्वारा।